ग्रामीण संकट के विषय में जागरूक होने की आवश्यकता

drishtiias.com/hindi/printpdf/need-to-be-aware-of-rural-crisis

भूमिका

आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व बिहार के चंपारन ज़िले के किसानों पर तिनकठिया प्रणाली के अंतर्गत अपनी ज़मीन के 15% हिस्से पर नील की खेती करने के लिये दबाव बनाया गया था। एक बार नील का उत्पादन करने के पश्चात् भी किसानों से कई प्रकार के उपकरों की जबरन वसूली की जाती थी। हालाँकि, इसके विरोध में किसान आंदोलन भी करते थे परंतु उनके आंदोलनों को ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा कुचल दिया जाता था। विडंबना यह है कि आज़ादी के 70 वर्ष बाद भी भारत का कृषि समुदाय इस प्रकार की अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है।

कृषि क्षेत्र की आवश्यकता

यदि वृहद् स्तर पर इस स्थिति का अवलोकन किया जाए तो भारत में कृषि जटिल और गहन निर्णय वाली प्रक्रिया है। किसानों को फसलों के चुनाव (वार्षिक अथवा अल्पकालिक) से लेकर उनकी खेती करने के समय का निर्धारण करने तक के सभी निर्णय स्वयं लेने पड़ते हैं।

इसके अलावा कृषि आगतों का मूल्य, जल की उपलब्धता, मिट्टी का टिकाऊपन और कीटनाशक प्रबंधन जैसे कारक भी कृषि को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। ये सभी कारक सीमांत किसानों के लिये आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी नहीं हैं तथा उनका एक गलत निर्णय उनके लिये नुकसानदायक सिद्ध हो सकता है।

भारत के कृषि क्षेत्र में ऋण के स्तर

सबसे अधिक अनिश्चितता ग्रामीण ऋण के स्तरों में देखने को मिलती है। पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा किये गए एक अध्ययन के अनुसार, 10 हेक्टेयर से बड़ी जोतों वाले बड़े किसानों का ऋण-आय (debt income ratio) अनुपात 0.26 था जबकि 4 से 10 हेक्टेयर जोत वाले सीमांत किसानों और 2 से 4 हेक्टेयर जोत वाले अर्द्ध-मध्यम किसानों के लिये यह अनुपात 0.34 था।

इससे यह पता चलता है कि ये सभी किसान तो इस ऋण को वहन कर सकने में सक्षम थे। परंतु 1 से 2 हेक्टेयर वाले छोटे किसान और 1 हेक्टेयर से कम जोत वाले सीमांत किसान ऋण का अत्यधिक बोझ वहन करते थे क्योंकि उनके लिये ऋण-आय अनुपात क्रमशः 0.94 और 1.42 था| आज भी किसान 50% से अधिक ऋण गैर-बैंकिंग स्रोतों से प्राप्त करते हैं।

कुछ चिंताजनक आँकड़े

कुछ आँकड़े भारत के कृषि क्षेत्र की चिंताजनक तस्वीर पेश करते हैं। उदाहरण के लिये, जहाँ वर्ष 1971 में औसत भू-जोतें 2.3 हेक्टेयर की थीं, वहीं वर्ष 2011 में ये जोतें मात्र 1.16 हेक्टेयर की रह गई थीं। इसके अतिरिक्त, आगतों के औसत मूल्य में वृद्धि होने पर कृषि लागतों में भी निरंतर वृद्धि हो रही है।

वर्तमान में एक किसान बमुश्किल ही धान की प्रति हेक्टेयर खेती पर एक माह में 2,600 रूपए प्राप्त करता है जबकि खेतों के मज़दूर एक महीने में 5000 रूपए से कम ही कमाते हैं। वर्ष 1991 से 2012 के मध्य वास्तविक कृषि पारिश्रमिक में 2.9% की दर से औसत वार्षिक वृद्धि हुई है जबकि वर्ष 2002 से 2007 के मध्य कृषि पारिश्रमिकों में कमी आई है।

ध्यान देने योग्य है कि वर्ष 2004-05 और 2010-11 के मध्य लगभग 30.5 मिलियन लोगों ने कृषि कार्य छोड़ दिया था तथा कृषि को द्वितीयक और तृतीयक वरीयता के अंतर्गत रखा। वर्ष 2011 में योजना आयोग ने यह अनुमान लगाया कि कृषि में कार्य करने वाले लोगों की संख्या में वर्ष 2020 तक 200 मिलियन की कमी आ जाएगी।

किसानों की समस्याएँ

- कृषि संबंधी विभिन्न समस्याओं के चलते अनेक किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं। किसानों की आत्महत्या करने की दर सीमित कृषि और असमान वर्षा वितरण वाले राज्यों में अधिक है।
- दरअसल,वर्ष 2015 में कुल किसान आत्महत्याओं में से 87.5% आत्महत्याएँ ऐसे ही राज्यों में हुई थी। विदित हो कि पिछले 20 वर्षों में 3,21,428 से अधिक किसान आत्महत्याएँ कर चुके हैं।
- महाराष्ट्र में बड़े किसानों के पास आधुनिक पंप हैं जिनसे वे बड़ी मात्रा में जल प्राप्त कर सकते हैं तथा छोटे और सीमांत किसानों को कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।
- उर्वरकों और कीटनाशकों के मूल्यों में भी वृद्धि हो रही है जिससे सीमांत किसान कार्बनिक साधनों को अपना रहे हैं।
- दरअसल, उच्च पैदावार वाले बीज की किस्मों की सीमित उपलब्धता और उच्च मूल्य भी कृषि उत्पादकता को कम करते है।
- इस प्रकार की बाधाओं को देखते हुए किसानों के पास फसल के विविधिकरण, मुख्य रूप से मुख्य फसलों जैसे-गेहूँ और चावल पर ध्यान केंद्रित करने का सीमित अवसर है।
- ध्यातव्य है कि सरकार इन फसलों के लिये सरकार उत्पाद और कटाई के पश्चात् अवसंरचना उपलब्ध कराने हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

ऋण माफी की राजनीति

स्वतंत्रता से वर्तमान समय तक विभिन्न प्रकार से सरकार द्वारा संस्थागत समर्थन उपलब्ध कराया गया है। वर्ष 1982 में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना ट्यूबवेल सिंचाई, कृषि का मशीनीकरण और अन्य सहायक गतिविधियों के लिये वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गई थी, परंतु वर्ष 1990 में की गई राष्ट्रव्यापी कृषि ऋण की शुरुआत का ग्रामीण किसानों पर हानिकारक प्रभाव पड़ा और किसानों के मध्य ऋण अनुशासनहीनता को देखते हुए उन्हें एक अल्पकालिक उपशामक उपलब्ध कराया गया जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण ऋण में होने वाली वृद्धि में कमी आ गई।

वर्ष 2004-05 के केंद्रीय बजट में कृषि ऋण को दोगुना करने की बात कही गई थी जबकि वर्ष 2006 में किसानों को 2% की ब्याज सब्सिडी उपलब्ध कराई गई थी जिससे किसान 3 लाख रूपए तक के ऋण को 7% की वार्षिक दर पर लेने में सक्षम हुए। एक अन्य ऋण माफी योजना को वर्ष 2009 में लोकसभा चुनावों से पूर्व मंज़ूरी दी गई थी। वर्ष 2011 में सरकार ने किसानों के लिये 3% ब्याज सब्सिडी उपलब्ध कराई जिसका भुगतान सीधे उनके किसान क्रेडिट कार्ड में किया गया।

वर्तमान परिदृश्य

हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकार कि कृषि ऋण माफी योजना को महाराष्ट्र, पंजाब और कर्नाटक में भी दोहराया गया है । इसी प्रकार की मांगें मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा में भी उठ रही हैं। छोटे और सीमांत किसानों को सरकार से समर्थन मिलना चाहिये।

वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी भारत की कृषि नीति किसानों के मध्य एक औपचारिक ऋण संस्कृति का सृजन करने में सफल नहीं रही है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब अगले चुनावों में अगली ऋण माफी योजना की शुरुआत की जाएगी तो कोई भी किसान अपने ऋणों का भुगतान आज क्यों करेगा? ऐसी योजनाएँ किसानों को उनकी क्षमता से परे जटिल कार्य करने के लिये भी प्रोत्साहित कर सकती हैं।

यदि वास्तविकता की बात की जाए तो भारत में ग्रामीण संकट नहीं है। कृषि भूमि के मामले में भारत विश्व का दूसरा बड़ा देश है। हालाँकि, इसकी 35% से कम भूमि ही सिंचित है जबकि इसकी शेष भूमि पर वर्षा की अनियमितता का प्रभाव पड़ता है।

क्या किया जाना चाहिये?

- भारत के छोटे और सीमांत किसानों को कृषि ऋण में अन्य छूट की आवश्यकता है। यद्यपि इसे भविष्य में जारी नहीं रखा जा सकता है तथापि उनकी दुर्दशा को दूर करने के लिये अन्य उपाय किये जा सकते हैं।
- कृषि उपकरणों और कीटनाशकों को खरीदने के लिये उन्हें सब्सिडी दी जा सकती है जबकि राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के माध्यम से स्वास्थ्य बीमा कवरेज़ का भी विस्तार किया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम का विस्तार करके उन्हें रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं।
- किसानों को उनके खेतों की जुताई के लिये भुगतान करके आगतों की लागतों को कम किया जा सकता है। इस प्रकार के तरीके अपनाने से उनकी कुल आमदनी में भी वृद्धि हो सकती है।

निष्कर्ष

अंततः हमें ग्रामीण संकट राष्ट्रीय चर्चा का विषय बनाने की आवश्यकता है। चंपारन सत्याग्रह के विपरीत किसानों की इस पीड़ादायक स्थिति पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। अतः आवश्यकता है कि संसद की बैठक में स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट पर विचार किया जाए तथा भारत की कृषि की वास्तविक स्थिति से अवगत हुआ जाए। किसानों के प्रति सहानुभूति जताकर और कृषि संबंधी वास्तविकता का मूल्यांकन करके ही भारतीय कृषि से संबंधित अथवा ग्रामीण संकट को दूर किया जा सकता है।